अपूर्व रत्न ॥

जिसे

सर्व साधारण के उपकारार्थ

मुज़फ्फ़रपुर भदूरिया मिड्ल इंगलिश स्कूल के
प्रथमाध्यापक जगदीश नारायण मिश्र

ने

रचकर प्रकाशित किया ।

मुज़फ्फ़रपुर,
बाबू पुरुषोत्तम नारायण नन्दे के प्रबन्ध
रत्नाकर प्रेस में छपा ।

प्रथमवार) ता० १५ मार्च { मूल्य *
२००० प्रति — १९१६ — चार आने ।

सम्मतियाँ ।

---
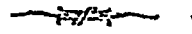
(१) मुज़फ़्फ़रपुर गवर्नमेन्ट ग्रीयर कौलेज के हिन्दी प्रोफ़ेसर श्री पं० रामदास राय मिश्र काव्यतीर्थ :—

"मैंने 'अपूर्व रत्न' नामक पुस्तक पढ़ी। इसके पढ़ने से परमानन्द हुआ। पुस्तक देशहित के ध्यान से लिखी गयी है तथा उपकारी और उपादेय है। हम पण्डित जी के प्रथमोद्योग को साधुवाद देते हैं और आशा करते हैं, पण्डित जी अपने उद्योग में अग्रसर हो हिन्दी साहित्य को और रत्नों से भी संचित करेंगे।"

(२) स्थानीय बाबू रामदयालु सिंह बी० ए० एल्० एल्० बी० :—

"मैंने पंडित जगदीश नारायण मिश्र कृत 'अपूर्वरत्न' नामक पुस्तक को देखा है। पुस्तक के विषय उपादेय तथा लेख ज़ोरदार हैं। देशदशा को सुधारने की दृष्टि से लिखे गये हैं। पण्डित जी का उद्योग प्रशंसनीय है। आशा है, हिन्दी प्रेमी इनका उत्साह बढ़ावेंगे।"

(३) मुज़फ़्फ़रपुर निवासी बाबू लक्ष्मी नारायण गुप्त बी०

"श्रीयुत पण्डित जगदीश नारायण मिश्र कृत 'अपूर्व रत्न' नामक पुस्तक को मैंने देखा है। इस पुस्तक में अनेक शिक्षा-दायक विषयों पर सरल हिन्दी में निबन्ध लिखे गये हैं। यह बालकों को ही नहीं परंच सभी को उपयोगी और शीलसम्पन्न बनाने वाली है। इसकी एक एक प्रति यदि विद्यार्थियों के हाथ में पड़े तो बड़ा उपकार हो। आशा है कि हिन्दी प्रेमी इस पुस्तक का आदर कर पण्डित जी का उत्साह बढ़ावेंगे।"

(४) मुज़फ्फ़रपुर, शारदा औषधालय के आयुर्वेदाचार्य श्री शिवचन्द्र मिश्र काव्यतीर्थ, सुवर्ण पदक प्राप्त चिकित्सकः-

" 'अपूर्व रत्न' नाम की पुस्तक में लिखे गये निबन्ध यथार्थ में ही रत्न हैं। पुस्तक की उपयोगिता के ध्यान से यह निस्स-ङ्कोच कहा जा सकता है कि इसी तरह सरल भाषा तथा उच्च भावों से भरी हुई पुस्तकें वर्तमानकालिक शिक्षा पद्धति के अन्धकारग्रस्त अंशों में यथेष्ट प्रकाश फैलाकर शिक्षा के सर्वाङ्ग सुन्दर रूपको जन समाज के सामने उपस्थित करने में समर्थ होसकती हैं। वह दिन शिक्षा के प्रारम्भिक विभाग के लिये सचमुच हमारी समझ में विशेष गौरवयुक्त होगा जिस दिन इस तरह की उपयुक्त पुस्तकों का प्रचार उस में बढ़ेगा। आशा है, हमारे सहृदय लेखक की लेखनी सदाही इसी प्रकार सार-गर्भित निबन्धों को प्रकाश करके देशोपकार में प्रवृत्त रहा करेगी।"

स्कूल मुज़फ्फ़रपुरस्थः संमनुतेयदयंमिश्रवरलेखोभारतीय सनाजेऽतीवोपकरिष्यते गृहीतश्च पाठकगणैरभ्यासेनामीषां मनांस्यानन्दयिष्यतिचेतिशम् ।

(६) मुज़फ्फ़रपुर, शर्फ़ुद्दीनपुर निवासी बाबू रुद्रप्रसाद :—

"मैंने आपकी 'अपूर्व रत्न' नामक पुस्तक आद्योपान्त अवलोकन की। यह यथार्थ में अपूर्व ही रत्न है। मैंने बचपन में 'नौ रत्न' की पुस्तक देखी थी जो इस के निकट कौड़ियों के मूल्य में महँगी है। चौदह रत्न जो समुद्र मथन के समय निकले थे, अवश्य ही वे अमूल्य हैं। परन्तु इस ग्रन्थ का उस से अधिक अन्तिम् पन्द्रहवां रत्न प्राप्त होने का हर्ष जी ही जानता है ।

इस के शब्द तथा गद्य कटु इत्यादि से रहित, व्याकरण से संशोधित, प्रयोजनीय वस्तु से सालंकृत, न्यूनाधिक वार्त्ताओं से निर्दोषित, परमोपयोगी, बालक, शिक्षक तथा सर्व सज्जन मनरंजन है। उत्साहचित्त से यही कहना पड़ता है कि :—

सवैया ।

बालक नाम सुबुद्धि रखैं शुचि, ता फल होत भलाहि भलाते।
जो जगदीश रचो शुभ पुस्तक, क्यों न अनूपम हो सुरुलाते॥
रत्न अपूर्व अवश्य अहै, यदि प्राप्त करैं, सुधरैं कुदशाते।
रुद्र क धन भारत रंकहिं, प्राप्त भयो जगदीश कृपाते॥

दोहा ।

भारत रंक विचारके, कृपा कीन्ह जगदीश ;
लूटो रत्न धनेश हो, सबै नवावैं शीश ॥"

निवेदन ।

मिति ६-१-१६ रात्रि ११ बजे, जब मैंने शय्या का शरण लिया, मेरे तुच्छ ध्यान ने तत्क्षण भारत की कुरीतियों की चिन्ता में निमग्न हो निद्रादेवी के विरुद्ध तीन घन्टों तक युद्ध किया। पुनः वही मुझे बाहर पुस्तकालय में लाने का कारण हुआ। उसी समय से मैं इस छोटी पुस्तक को लिखने लगा और प्रति रात्रि ३ से ५ बजे तक इस कार्य में लीन रहता था। यद्यपि मेरी इच्छा कुछ विशेष दिनों तक इसे लिखते रहकर देशसेवा करने की थी। परन्तु हमारे मित्रों का अनुरोध पाँच ही दिनों के परिश्रम को "इति श्री" करके प्रकाशन के लिये "श्री गणेशाय नमः" करने का हुआ।

प्रिय पाठकगण! यदि इस में किसी प्रकार की भूल हो गयी हो तो आप क्षमा करेंगे और कृपया मुझे सूचित कर अनुगृहीत करेंगे जिस से मैं भविष्य में इस का सुधार कर सकूं

मुज़फ्फ़रपुर, भटूरिया मिड्ल इङ्गलिश स्कूल की आर्थिक व्यवस्था परमशोचनीय देख कर, मैं इस पुस्तक से प्राप्त द्रव्य (व्यय काट कर) उक्त विद्यालय को प्रदान करूंगा । आशा करता हूं कि परमोपकार ही समझ सर्वसाधारण इस की एक २ प्रति लेकर "एक पंथ दो काज" के फल को लूटें ।

१६-१-१६   भवदीय,

मुज़फ्फ़रपुर ।   जगदीश नारायण मिश्र ।

अपूर्व रत्न ।

ईश्वर-विनय ।

ईश्वर ! आपने ही मुझे बनाया है । मेरे लिये संसार की सब वस्तुएं, मेरे आने के पूर्व ही आपने रच दी हैं । आप सदा मेरी रक्षा करते हैं । अतः आप को प्रणाम है ।

(१) जब आपने मुझे मनुष्य का रूप दिया है तब बुद्धि तथा विद्या भी दीजिये जिस से मैं मनुष्य होने का अधिकारी होऊं।

(२) जब मेरी माता मुझे "हौवा या बुड्या" कह कर भय दिखाती है, उस समय मेरा कोमल हृदय काँप उठता है और मुझे भयभीत बना देता है। अतः आप मेरे हृदय को निर्भय और बलवान बनाइये।

(३) जिन माता, पिता और गुरु की कृपा से मैं मनुष्यत्व पाऊंगा, उनकी भक्ति मेरे हृदय में भरिये।

(४) जिस राजा के छत्र की छाया में मैं वास करता हूं और जिस की आज्ञा मुझे पालन करना उचित है, उसे न्याय-वान बनाये रखिये तथा उसके प्रति मेरी भक्ति अचल कीजिये।

(५) सत्य आप को प्रिय है परन्तु वह मुझे पहाड़ सा कठिन जान पड़ता है। वह निराकार है। अतः उस के धारण का सुगम मार्ग बताइये और वैसी शक्ति मुझे दीजिये।

(६) मैं रोगग्रस्त रहता हूं अतः अपने शरीर की रक्षा कर सकूं, वैसी संगति दीजिये तथा वैसे उपाय दृष्टिगोचर कराइये।

(७) चोरी, हिंसा, ईर्षा, क्रोध और आलस्य मेरे शत्रु हैं; इन्हें पराजित करने के उपाय बताकर मेरा उद्धार कीजिये ।

(८) मुझे इस तोतली बोली को छोड़ना कष्ट सा जान पड़ता है । अतः मधुरभाषी तथा मातृभाषा का सेवक बनाइये ।

(९) मैं छोटे २ कष्टों से शीघ्र ही व्याकुल होकर विशेष दुखी होजाता हूं; इन के हटाने के लिये मुझे धैर्य्यवान तथा परिश्रमी बनाइये ।

(१०) अभिमान से मैं सदा हारा रहता हूं, वही मुझे आत्मप्रशंसा की ओर लेजाता है और परिश्रम का शत्रु बनाता है; आप उसे "कालापानी" का दंड दीजिये ।

(११) अपना उपकार कौन नहीं चाहता पर स्वार्थपरता से मेरा पिण्ड छोड़ा कर मुझे परोपकार की बुद्धि दीजिये ।

(१२) द्रव्योपार्ज्जन मुझे उतना कठिन जान नहीं पड़ता जितना उसके उचित व्यय करने का उपाय; अतः कृपया सञ्चय और व्यय का उचित मार्ग मुझे दिखलाकर जहां अन्धकार है, वहां प्रकाश फैलादीजिये ।

(१३) जो अपराध मुझ से होजातेहैं, उनके लिये मैं घोर चिन्ता में पड़ जाताहूं और पश्चाताप करने लगता... अतः इस

सत्यानाशी शत्रु से मेरी रक्षा कीजिये और मुझे ऐसी बुद्धि दीजिये कि मैं अपनी जीवननौका को अपराधों के गुप्त और प्रकट चट्टानों के टक्कर से बचा सकूं।

(१४) यदि किसी से मेल की इच्छा करता भी हूं तो वह मुझे ऐसे गोते देता है कि वह अमूल्य पदार्थ पानी में गिरकर दृष्टि से बाहर चला जाता है; उसे किसी के द्वारा मँगवा दीजिये।

(१५) हे नाथ! मैंने आप से जो ये १४ अपूर्व रत्न मांगे हैं, इन से भी मेरा कार्य पूर्णतः नहीं चल सकेगा; अतः शेष में वही मांगता हूं जिस से मेरी कामना सिद्ध होवे। आशा है, आप उस विशेष आवश्यकीय रत्न को छिपाकर नहीं रखेंगे। आप अन्तर्यामी हैं! कर्त्ता, पोषक तथा नाशक हैं! दीजिये २ मुझे अपने चरण कमल की प्रीति दीजिये।

- -

वुद्धि।

द्धि एक अद्भुत शक्ति है जिस के वल से विषय विचारे जाते हैं। इस के विकाश भी अनेक प्रकार से हो सकते हैं; यथा अवोध वालकों की माता उन्हें मामा, चाचा इत्यादि कह कर पहचान कराती हैं। दो और तीन का योग पांच होता है, गुरुजी इस को सिद्ध करते हुए वालक के जी में प्रमाण द्वारा विश्वास करा देते हैं। जितना योग्य तथा परिश्रमी शिक्षक वालक को मिलेगा उतना ही उसकी वुद्धि बढ़ सकेगी। वालक के प्रति यदि कोई कहानी कही जाय तो वह भी उसे दोहराने की चेष्टा करेगा, विशेष रटने से वुद्धि भ्रष्ट होती है। विद्यार्थी की वुद्धि अधिक ताड़ना से भी नष्ट हो जाती है। रक्षक को चाहिये कि वालक को सदा उनके किये हुए कार्यों की भलाई वुराई स्पष्ट रीति से समझा दें। उन के हृदय में इस वात को अङ्कित न कर देने और केवल दण्ड देने से कोई

लाभ नहीं।

बुद्धि प्राणिमात्र में है, तब ही तो बन्दर, चूहे इत्यादि भी अनेक प्रशंसनीय कार्य करते हैं। सब से पहले मनुष्य के मन में किसी विषय के विचार उत्पन्न होते हैं; बुद्धि के द्वारा मनुष्य उन विचारों को वारवार सोचता है। जब इस तरह विचार पक्के हो जाते हैं तब बुद्धि ही के बल से मनुष्य उन विचारों को कार्य में परिणत कर देता है—अर्थात् मनुष्य के जितने काम हैं, सब उस की बुद्धि ही के प्रत्यक्ष रूप हैं। बुद्धि ही मनुष्य का यथार्थ बल है (बुद्धिर्यस्यबलंतस्य)। रेल, जहाज़, वायुयान, पनडुब्बी जहाज़, बिना तार के तार आदि विज्ञान की जितनी करतूत हम देखते हैं, वे सब बुद्धि ही के खेल हैं। बुद्धि ही के द्वारा निर्बल मनुष्य भी हाथी के से बलवान और सिंह जैसे पराक्रमी पशुओं को अपने वश में कर के उन से अपना काम लेता है। संसार के सब कर्त्तव्यों का मूल बुद्धि है। अतः इस की वृद्धि का उपाय परम कर्त्तव्य है।

विद्या ।

द्या एक अमूल्य रत्न है जिसे रंग, आकार तथा परिमाण नहीं होते । विद्या (ज्ञान) के अंश अनेक कलायें हैं; यथा लिखना पढ़ना, अस्त्र शस्त्र चलाना, सीना पिरोना, भोजन बनाना, घर तथा नाव बनाना, औषधि द्वारा रोग हरण करना इत्यादि । विद्या रूपी अमूल्य गुण जिस के पास है, वह कभी चिन्तित नहीं रहता । वह अपना समय तो आनन्द से बिताता ही है परन्तु उस के साथ में रहनेवाले भी स्वर्ग सुख प्राप्त करते हैं । राजा का मान अपने राज्य ही भर में परन्तु विद्वान् का सर्वत्र होता है । विद्वानों की मण्डली में मूर्ख वैसे ही लगते हैं जैसे हंसों में बगुला । विद्या से मनुष्य की चाल सुधर जाती है । विद्या से मनुष्य बुद्धिमान हो जाते हैं और सब कार्यों के करने की सरल रीति निकालते हैं । विद्या ही से मनुष्य अनेक गुण प्राप्त करते हैं । विद्या ही कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार जी में बैठा देती है और इसी से संसार के सब प्रकार के कार्य पूर्णतः सम्पन्न होते हैं । उन्नतशाली देशों के नाम विद्या ही के प्रभाव से उन्नति-शिखर पर विराजमान हैं । पूर्व में हमारा भारतवर्ष विद्या ही के बल से संसार में अद्वितीय था । विद्याविहीनों का कहना

ह कि विद्वान् परिश्रम से भागते हैं तथा उन की इच्छा केवल अपनी प्रतिष्ठा वृद्धि की ओर रहती है जिस से अनेक कार्यों में विघ्न पड़ता है। उन का यह ध्यान परम भ्रममूलक सिद्ध हुआ है।

अतः सज्जनों ! यदि बालकों की भलाई चाहते तो तो बाल विवाह से मुख मोड़ो, उन्हें शारीरिक बलवृद्धि के साथ साथ विद्या सिखाओ और उनकी चाल परम प्रशंसनीय बनवाओ। परन्तु स्मरण रहे कि बालकों की विशेष उन्नति बिना स्त्री शिक्षा के होना पूर्ण असम्भव है। स्त्रियां घर की प्रत्यक्ष लक्ष्मी हैं, इन्हीं की संगति में रहकर बालक अपने जीवन को सुधार या बिगाड़ सकते हैं। पुरुष के किये हुए उत्तम कर्मों को भी अशिक्षित स्त्रियां पूर्णतः नष्ट कर के उन्हें कलंकित कर देती हैं, अतः हम को चाहिये कि शीघ्र ही स्त्री शिक्षा फैला कर स्त्रियों का आदर करें। तभी हमारी उन्नति की अभिलाषायें पूरी होंगी। कोई२ कहते हैं कि स्त्रियों को पढ़ाना बन्दर के हाथ में छुरी देना है। ऐसे २ अनुभवी से विनय है कि वे कृपा कर के अपने पाँव काट लें, जिस में उनके गिरने का भय कभी भी न रहे। बड़े २ विद्वानों का कथन है कि एक बालक को शिक्षा देने से केवल वही शिक्षित होगा परन्तु एक बालिका को शिक्षा देने से उस से उत्पन्न भयी हुई सब ही सन्तानें शिक्षित होंगी। विद्या से जितने प्रकार के लाभ पुरुष को होते हैं उतने ही [illegible] सिद्धान्त

होने से उनके विचार में अन्तर पड़ने की कभी आशा ही न रहेगी। शिक्षित स्त्री अपने स्वामी के विचार को समझ सकेगी तथा उस के अनुसार कार्य करने की उस को स्वाभाविक इच्छा रहेगी। जब स्त्री अपने पति के आज्ञानुसार कार्य्य करेगी तब उन में परस्पर कभी कलह न होगा। झगड़ा न रहने से ही उन्हें मनमाना आनन्द प्राप्त होगा। आनन्द के प्राप्त से दोनों प्रसन्न रहेंगे और प्रसन्नता से गृहस्थ की गाड़ी संसार के पथ में सुगमता से चलेगी। सुख सम्पदा प्राप्त होते किसी बात की कमी न रहेगी। ऐसे ही स्त्री पुरुष यहां रह कर ही स्वर्ग सुख भोगते हैं। अतः उपकारी सज्जनों! अपनी गाढ़ी कमाई का धन विद्या रूपी धर्म्मशाला में लगा कर देश का उपकार कर के अपना भी जन्म सुफल करो।

[२]

हौवा या बुड़या ।

लकों को उनकी बाल्यावस्था से ही विद्या-विहीन स्त्रियों की संगति में हौवा या बुड़या शब्द सुन २ कर वीरता और निर्भयता खो-देनी पड़ती हैं। आप बालक के हृदय की कोमलता विचारिये और देखिये कि उसकी वृद्धि तथा उन्नति के समय में इसका प्रभाव कैसा होगा। ठीक वैसाही होगा जैसे किसी नवीन पौधे को कोपलें अग्नि द्वारा झुलसा दी जायँ। देखिये, यही कारण है कि इस परम पवित्र भारत भूमि में भूत, चुड़ैल इत्यादि का भय विशेष बैठा हुआ है। "मन भूत तथा शंका डाइन" तो सिद्ध ही है। बच्चे बराबर भूतों की कहानियां सुन २ कर कभी २ प्राण तक खो बैठते हैं। अनेक युवकों तथा युवतियों ने भी इस भ्रम के चक्कर में आकर अपने बहुमूल्य प्राणों को खो दिये हैं। वे ऐसे भ्रम में पड़ जाते हैं कि विद्वानों की बातों का उन पर प्रभाव पड़ना कठिन हो जाता है। देखिये, इस की

माता ।
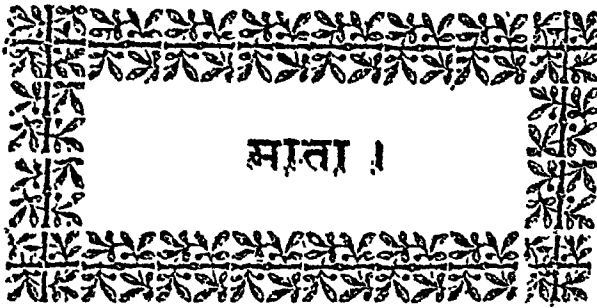
ता से बढ़कर संसार में कौन हो सकता है। जिसने जन्म दिया है और इस प्रकार से अपने शरीर पर कष्ट लेकर पाला पोसा है कि उसे वर्णन करना परछाहीं पकड़ने की चेष्टा करना है। देखिये, गर्भाधान के समय से लेकर बालक के बड़े होने तक माता को कितना कष्ट सहना पड़ता है, विशेष करके "दांता और माता" (दांत निकलने और शीतला होने) के समय में। पशुओं में भी मातृ-स्नेह यहां तक है कि उनके छोटे बच्चों को यदि पशु झुंड में छोड़ दिया जाय तो वे शीघ्र ही अपनी माता को पहचान कर अपनी आकुलता त्याग देंगे। माता बच्चे के लिये क्या नहीं करती, इन्हीं कारणों से शास्त्रवेत्ताओं ने माता से कभी भी उऋण होना नहीं बताया है।

पिता।

पिता ही बालकों के जन्मदाता और रक्षक होते हैं। इनको सब प्रकार से बच्चों का प्रतिपालन करना पड़ता है। बच्चों की सर्वोन्नति पर इन्हीं को विशेष ध्यान रखना पड़ता है। संसार में प्रत्येक मनुष्य औरों से बढ़ जाना चाहता है, केवल पिता ही है जो चाहता है कि मेरा पुत्र हर प्रकार से मुझसे भी बढ़ कर श्रेष्ठता प्राप्त करे। शास्त्रज्ञों ने कहा है कि पिता ही धर्म्म, कर्म और तप के मूल हैं, इनकी ही प्रसन्नता से ईश्वर भी प्रसन्न होते हैं।

गुरु।

स प्रकार माता पिता ने जन्म तथा प्रतिपालनादि करके उपकार किया है, उस से कहीं बढ़कर गुरु ने विद्या रूपी दीप हृदय के अन्धकार में जलाकर मनुष्य बनाया है। नहीं तो पशुओं और मनुष्यों में पुच्छ सींग के अतिरिक्त और क्या भेद होता। परन्तु कृतघ्न तथा मूर्ख नगर वासियों के हृदयमें गुरु भक्ति का नाम भी नहीं है, यही कारण है कि वहां बच्चे माता पिता का अनादर करते हैं। परन्तु देहातों की दशा ठीक इस के विपरीत है. जिस कारण वहां के बच्चे अधिक उन्नति कर सकते हैं। अतः जिस प्रकार माता पिता पूजनीय होते हैं, उन से कहीं बढ़कर गुरु की भक्ति कर्त्तव्य है।

राजा और राज भक्ति ।

इस असार संसार में प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर राजा में विराजमान हैं। जिस प्रकार हमारी कामनायें ईश्वर से पूर्ण तथा नाश को जाती हैं, उसी प्रकार राजा भी जन्म देना या मरे को जिलाना छोड़कर सब कुछ कर सकते हैं। इसी कारण शास्त्रों में राजा के दर्शन का बड़ा ही माहात्म्य लिखा हुआ है। यदि हम उचित उद्योग करें और जो कुछ उन्नति के सामान हमारे महाराज के राज्य में हमें प्राप्त हैं, उनका प्रयोग करें तो हमें कोई भी कष्ट न हो। हमें जो कुछ दुःख होता है, उसका कारण हमारा आलस्य है। जिस प्रकार हम ईश्वर से कामनाओं की प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकार अपने राजा से भी करनी चाहिये। कुछ खेद तो यह समझ कर अवश्य होता है कि मेरी प्रार्थनायें जिस प्रकार सर्वव्यापी परमेश्वर के कानों तक पहुंचती हैं, उस प्रकार स्थान विशेष में रहने वाले राजा के पास पहुंचना असम्भव है। जिस प्रकार परमदयालु ईश्वर सम दृष्टि से स्वयं सब की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार

उन्हों ने ही रक्षा करने के लिये राजा की सृष्टि की है। शास्त्रों में राजनीति के विषय में लिखा है कि जो राजभक्त है, वह मनुष्यरूप से देवता है। जिस प्रकार माता पिता और गुरु के लिये आन्तरिक प्रेम हमारे हृदय में है, उसी तरह राजा के प्रति भी होना चाहिये। जिस प्रकार हम ईश्वर तथा माता, पिता और गुरु से इच्छित वस्तु माँगते हैं, उसी प्रकार हम अपने महाराजाधिराज से भी मांग सकते हैं। जैसे ईश्वर पर समस्त सृष्टि के प्रबंध का भार रहता है वैसे ही राजा को अपने राज्य का। माता पिता की चेष्टा सदा रहती है कि हमारे बच्चे नीरोग रहें, क्षुधा पीड़ित न हों और हर प्रकार से उत्तम २ कर्म किया करें जिसमें उनका कल्याण हो। वैसेही न्यायवान राजा भी करते हैं। ईश्वर की आज्ञा न माननेवाले क्या कभी सुख प्राप्त कर सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। अतः हम को ईश्वराज्ञा पर विशेष ध्यान रखना चाहिये॥

---

[५]

सत्य ।
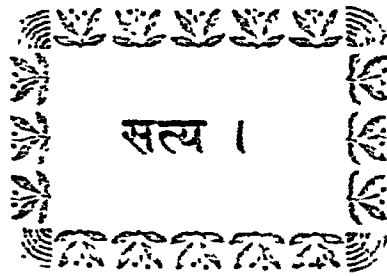
नास्तिसत्यात् परोधर्म्मः । सत्य के बराबर उत्तम कोई विषय नहीं है। बड़ों का ध्यान इस ओर विशेष रहना सत्य धारण कराना है। जिस प्रकार दूषित कर्म का दण्ड देना उचित है, उसी प्रकार प्रशंसित कर्म का उपहार देना भी उचित है। जैसे सत्य बोलना उचित है, वैसे क्या सत्य बोलवाना उचित नहीं है? हां, अवश्य है। किये हुए कर्मों को ज्यों का त्यों वर्णन करना सत्य कहलाता है। मनुष्य सत्य को दण्ड के भय से त्यागते हैं। इस कारण सत्य धारण कराने वालों को चाहिये कि सत्यबोलना जब सुकर्म समझते हैं तो सत्य भाषण का फल उन्हें प्रदान कर मिथ्यावादी बनाने की दया न करें। तब ही सत्य जीवित रहेगा। सत्य-धारी को भी चाहिये कि चाहे सर्वनाश हो जाय पर सत्य रत्न न त्यागें। असत्य पापों की जड़ है। यदि मनुष्य सत्य भाषण करने का प्रण कर ले तो वह किसी प्रकार का दुष्कर्म कर नहीं सकता।

[६]

स्वास्थ्य-रक्षा।
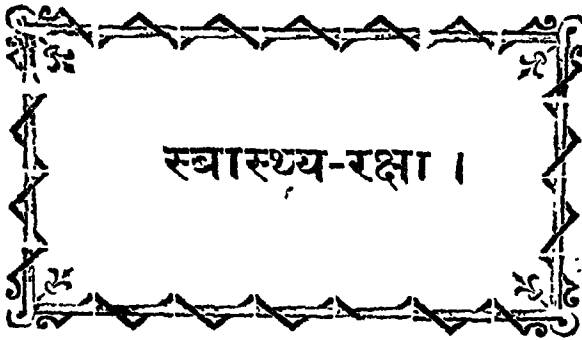
ध्यान रखना चाहिये कि शरीर में किसी प्रकार का रोग प्रवेश न कर सके। मूर्ख समझते हैं कि हमारे भाग्य में ईश्वर ने कष्ट लिख दिया था ; वे यह नहीं जानते कि ईश्वर को किसी से डाह नहीं है, वह समदर्शी तथा निष्कलंक है। कुछ भी बुद्धि रहने से अपनी भलाई सूझ सकती है। उचित कर्म करने से ही आरोग्यता प्राप्त होती है। आरोग्य से ही मस्तिष्क की रक्षा होती है और उस से संसार के सब सुकर्म हो सकते हैं। आरोग्य न रहने से विद्या, बल, धन, यश और आयु की प्राप्ति तथा वृद्धि असम्भव है। मनुष्य क्षणमात्र सुख के लिये सुन्दरियों के सौन्दर्य्य पर मोहित हो अपना ब्रह्मचर्य्य नष्ट कर देते हैं, वे यह नहीं स्मरण रखते कि जिस अमूल्य रत्न के व्यय करने में इतना आनन्द होता है, उस की रक्षा करने में

आत्महत्या का जो पातक है, वही स्वास्थ्य रक्षा न करने वालें को है। स्वास्थ्य रक्षा के कुछ नियम नीचे लिखे जाते है :— स्वच्छता, व्यायाम, स्वच्छ वायु तथा उंजेला आनेवाले गृह में रहना, शुद्ध तथा उत्तम भोजन करना, रात्रि में ६ से ८ घण्टों तक शयन, नियमानुसार कार्य करना और मादक पदार्थों से बचना, चिन्ता तथा खेद को पास न आने देना और कुसंगति में पड़कर अनेक प्रकार के अनुचित कर्म न करना ही उचित है॥

[७]
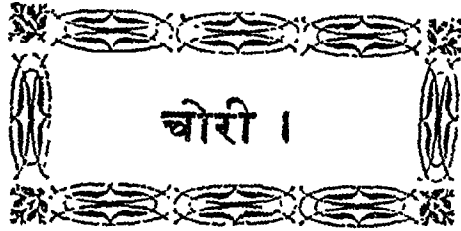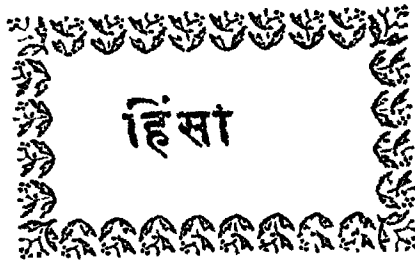
चोरी ।

दूसरे की वस्तु चुपचाप ले लेने को चोरी कहते हैं । इस की जड़ लालच है । आवश्यक्तायें पूरी न होने से लोग दूसरों की वस्तु से अपना काम चलाना चाहते हैं । यह अभ्यास बचपन ही से होता है । सच बोलने से चोरी शीघ्र ही छूट जाती है। जिस प्रकार मेरी वस्तु चोरी होने से मुझे दुःख होता है वैसे ही दूसरे को भी । चोर के पकड़े जाने पर जिस प्रकार उसकी तथा उसके पूर्वजों की अप्रतिष्ठा होती है सो सब ही जानते हैं । मान लिया जाय कि संयोग से भेद न भी खुले तो सब ही जानते हैं कि सर्वव्यापी ईश्वर से यह छिपा न रहेगा । वह इस दुष्कर्म के लिये भारी दण्ड देकर बदल कर देंगे इसी कारण बिना अन्तिम फल बिचारे कार्य नहीं करना चाहिये ॥

हिंसा

ईश्वर ने जीवन व्यतीत करने का सब को बराबर स्वत्व दिया है; अतएव निस्सहाय और निर्बल के सुख को स्वार्थ सिद्धि समझ कर हरण करना महा पाप है। हिंसकों का कथन है कि संसार में प्राणिमात्र मनुष्य के लाभ ही के लिये बनाये गये हैं और बड़े २ धर्मात्मा राजा भी आखेट करते आये हैं। पर देखिये, सब ही मतों से सिद्ध है कि कष्ट देना ही हिंसा है। अपनी वा अपने प्रिय बच्चों को हिंसा होने या जानने से जो भाव हृदय में उत्पन्न होता है, सब जानते हैं। दूसरों की रक्षा करनेवालों ने इसी में अपना सर्वस्व दे दिया है और वे आज तक परोपकारी तथा धर्मात्मा कहला रहे हैं। अतः हिंसकों को यदि परापकारी (पर+अपकारी = दूसरों की बुराई करने वाला) कहा जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा।

ईर्षा
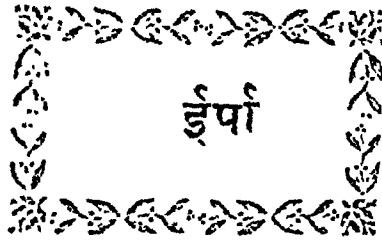
दूसरों का यश वा वृद्धि सुन कर जो न सहा जाता है, उसे ईर्षा वा डाह कहते हैं। इस के करने से पूर्ण पापी होना पड़ता है क्योंकि भलाई को नष्ट करने की चिन्ता अपने सुकर्मों में पहिले ही बाधा देती है। अतः ईर्षा करने वालों का हृदय आपरूपी अग्नि से सदा जलता रहता है। और इसी प्रकार जलते जलते राख भी न बचेगी। अतः प्रेमियों! इस शत्रु का नाम भी न सुनना चाहिये॥

क्रोध।
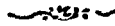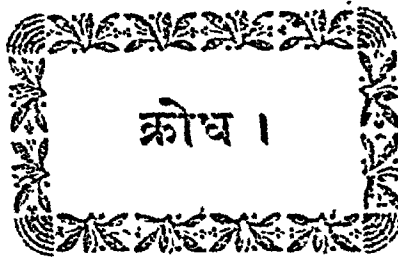
मन के अनुसार कार्य न होने से यह उत्पन्न होकर शरीर को सुखाता तथा स्वर को कर्कश बनाता है और बुद्धि तथा बल का नाशक होता है। इसके वश में होकर लोग भारी २ अनर्थ कर बैठते हैं, जिन से बड़ी २ हानियां होती हैं। अतः इसे त्यागना ही परम कर्त्तव्य है॥
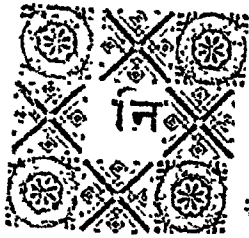
आलस्य ।

निर्बलता या काम करने का अभ्यास न रहने के कारण कार्य में जी न लगनाही आलस्य है। इस के वशीभूत होने से जीवन का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। इस शरीर में बिजली रूपी प्राण आलसी बन कर बैठ रहने के लिये नहीं, अपना कर्त्तव्य करने के लिये है। निर्जीव पदार्थ में आलस्य होना स्वाभाविक है। आलस्य दीर्घ सूत्रता है। अतः समय पर कार्य करने से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। हम लोग अपना पांच पांच मिनिट समय व्यर्थ खोकर भी यह नहीं समझते कि जीवन भर के इन सब पांच मिनिटों को जोड़ने से जीवन का एक बड़ा अंश हो जायगा। इस तरह यदि आलस्य ने हमारे पांच वर्ष नष्ट कर दिये तो पचास वर्ष की अवस्था तक जीकर भी यथार्थ में पैंतालीसवें ही वर्ष में हमारा प्राणान्त हो गया। इस लिये हम लोगों को अपना अपना आलस्य निर्जीव पदार्थों में रख कर अपने काम में तत्पर हो जाना चाहिये।

[८]

मधुर भाषण तथा मातृभाषा का प्रेम ।

हमलोग जो सदा बोलते हैं, लिखते हैं ; यह बोली सम्पूर्ण भारत में विशेषतः प्रचलित है: अतः यह सब की मातृभाषा कही जा सकती है। जब हम सब भारतमाता के पुत्र हैं तो माता की ही एक बोली की वृद्धि करें, जिस से इस का उद्धार हो। इस के ही उद्धार से हमारा भी उद्धार है। नम्रता से बोलना भाषा का माधुर्य्य है। और इसी से मनुष्य सब कुछ कर सकते है। चिड़ियायें मधुरी बोली ही के कारण पाली जाती हैं। यथा काक और कोयल रूप में एकसाँ होने पर भी अपनी २ बोली के कारण दूषित तथा प्रशंसित होते हैं। भाइयो! इस मोहनी मंत्र का व्यवहार सदा ही करना चाहिये।

धैर्य ।
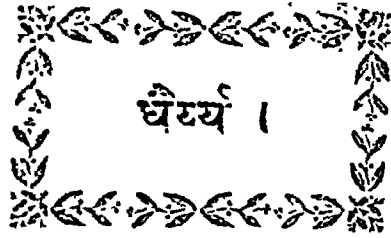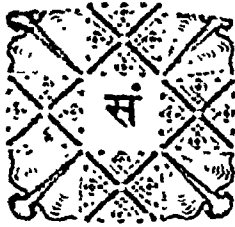
संसार का रूप सदा बदलता रहता है। जिस प्रकार ग्रहों की चाल है उसी प्रकार सुख तथा दुःख भी चलते रहते हैं। जिस प्रकार भोजन में खट्टा तथा मीठा दोनों की आवश्यकता है, वैसे ही सुख तथा दुःख भी हैं। सुख के पीछे यदि दुःख न हो तो सुख का मूल्य ही न रहेगा। परन्तु दुःख चेतनता की वृद्धि करता है। उस का शत्रु धैर्य है। धैर्य के दर्शन ही मात्र से दुःख ऐसा भागता है कि जैसे समय विना पहिया के ही चलता रहता है। अतः सन्तोष के साथ ही साथ, साहस पूर्वक निश्चित समय पर कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। क्योंकि धीर सदा सुखी और अधीर सदा दुखी रहते हैं।

परिश्रम ।

जगत में जितने प्रकार के कार्य होते हैं, सब परिश्रम ही से सिद्ध होते हैं। विना परिश्रम हाथ पैर का हिलाना भी असम्भव है। आलसी लोग उद्योग के भय से "भाग्य प्रवल है," यह कहते रहते हैं। वे जो भाग्य को प्रवल सिद्ध करना चाहते हैं, सो भी तो एक उद्योग ही सिद्ध होता है। परिश्रम करने में कभी आलस्य को निकट आने नहीं देना चाहिये। युवावस्था से बढ़ कर और किसी अवस्था में परिश्रम हो नहीं सकता। परिश्रम ऐसा वीर है कि इस के दर्शन ही मात्र से आलसादि दोषों को कोसों भागना पड़ता है। इस अद्वितीय कर्त्तव्य से विमुख कभी होना नहीं चाहिये। इसी परिश्रम ने ही संसार की उन्नति की है। उन्नतशाली देशों ने परिश्रम ही द्वारा अपनी उन्नति कर के इस आलसी भारत को सब देशों से पीछे गिना है। परिश्रम करते रहने से बल, आरोग्यता, विद्या, धन इत्यादि की सदा वृद्धि होती रहती है। अतः भाइयो! हमें सदा परिश्रम अपने साथ रखना चाहिये।

[१०]

अभिमान ।

अपने को धनी, बली, विद्वान् आदि समझना ही अभिमान कहलाता है। अभिमान से भविष्यत की सब उन्नति की आशा धूल में मिट जाती है। इस के प्राप्त होते ही रावण तथा दुर्योधनादि नष्ट किये गये। भगवान सदा अभिमान भंजन हैं। उन्नति तथा यश सदा नम्रता ही से प्राप्य हैं। अभिमानी अपने सन्मुख सब को तुच्छ गिनता है और इसी दुर्गुण से उस का सर्वस्व नष्ट हो जाता है। अतः सज्जनों! इसे शीघ्र ही कालापानी भेजो अर्थात् सदा के लिये त्यागो।
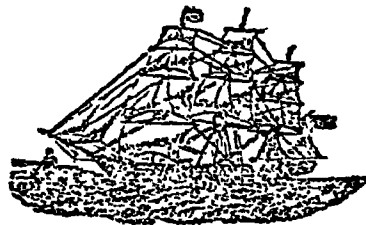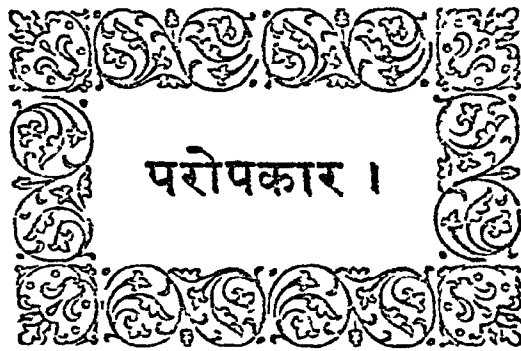
परोपकार।

दूसरों को भलाई करने को परोपकार कहते हैं। इसी के लिये ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है। जिन मनुष्यों ने यह अपूर्व रत्न धारण नहीं किया, वे पशुओं से भी बहुत नीच हैं। पशुओं में गाय, भैंस, बकरी, यहां तक कि कुत्ते भी परोपकार के कार्य में तत्पर रहते हैं। परन्तु स्वार्थ हम में इस प्रकार से घुसकर हमारा नाश कर रहा है जिस प्रकार कोकीन आज के मूर्ख नवयुवकों को। स्वार्थी यह नहीं जानते कि जैसे हम अपनी भलाई होने से प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार दूसरे भी होंगे। वे यह भी नहीं जानते कि भगवान ने स्वयं परोपकारी होने के कारण, बार २ लोगों के कष्ट मिटाने के हेतु अवतार लिया है। जिन ऋषियों ने संसार की भलाई की है, क्या उन्हों ने अपने शरीर तक को परोपकार में नहीं दे डाला है? हां, अवश्य ही; दधीच जी इस के एक उत्तम उदाहरण हैं। [illegible] कहते हैं, परन्तु वास्तविक उपकार
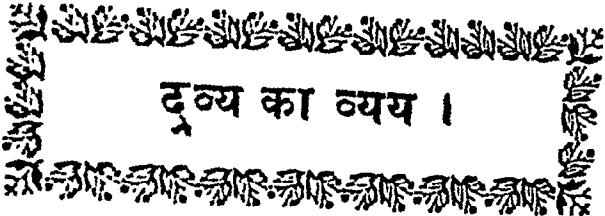
उन्हीं का होता है जो परोपकारी हैं। भारत के उपकारी जाति की उन्नति इस समय धन और जन दोनों ही की है। केवल उन में विद्या का अभाव अवश्य है और इस का कारण यही समझ में आता है कि धन तथा अन्न से प्रत्यक्षतः वे उपकार कर रहे हैं अतः वे भी स्वयं वही पाते जाते हैं। क्योंकि बबूल के पेड़ में आम नहीं फल सकता। उन के विद्वान् होने का उत्तम उपाय यही है कि वे शीघ्र ही विद्या के लिये धन व्यय कर, विद्यालय बनवा, योग्य शिक्षकों को रख लोगों को विद्यायुक्त बनावें। तब ही ईश्वर उन के ऊपर भी कृपा कर के उन को विद्या दान देंगे। "जो जस करै सो तस फल चाखा" सिद्ध ही है। विद्या से जब कोई धन बढ़ कर नहीं है, तब उसे उदारता पूर्वक दान करने में विलम्ब करना कदापि उचित नहीं है। धर्मशाला में पथिक रह कर क्षण ही मात्र आनन्द प्राप्त करते हैं; विद्या से वंश के वंश आनन्द पावेंगे। परोपकारियों को ऐसे २ कामों की ओर ध्यान देना चाहिये जिस में धनहीन बालकों को पुस्तक तथा भोजन मिलें। लट्ठभारतो को मोटे बनाना घोर पाप करना है। हाथ पैर रहते जो परिश्रम से भागते हैं, उन्हें दान देना, उनको आलसी बनाना है। यह उनका वास्तविक उपकार नहीं, अपकार है। बहुधा देखा गया है कि बहुत लोग भिक्षाटन करके अनेक सांसारिक कार्य चलाते हैं। वे कठिन परिश्रम से उपार्जित धन पाकर कुकर्मों में व्यय कर के दानी को भी

दोषित बना देते हैं। कोई तो भिक्षा प्राप्त धन जमा करके इसी संसार में छोड़कर शरीर त्याग देते हैं। कोई एकत्रित अन्न-वस्त्रादि बेच कर रुपये के ढेर लगा लेते हैं। अतः भारतवासी सज्जनों! निस्सन्देह आपने इतना धनकष्ट सहने पर भी दया को नहीं त्यागा है और शास्त्रों ने भी अन्नादि दान का बड़ा फल गाया है। अतएव आप को दान का पात्र तथा उसको न्याययुक्त विधि पर विशेष ध्यान देना चाहिये। सिद्धान्न देना परम कर्त्तव्य है, जिस में बेचने की प्रथा आप से आप उड़ जाय और तबही पात्रापात्र का ज्ञान भी हमे हो जायगा।

---

[१२]
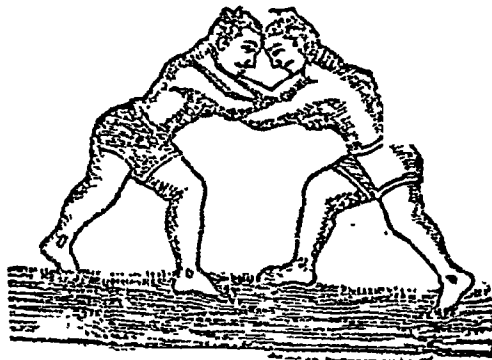
द्रव्य का व्यय।

विना विद्या के मनुष्य कुछ भी कर नहीं सकता। क्योंकि उपार्ज्जन करके अपना पेट तो सब ही जीव पोसते हैं। इस देश के लोग यदि व्यय का उचित मार्ग जानते तो देश की यह हीन दशा नहीं होती। कोई तो मादक पदार्थों के सेवन में ऐसे फंसे हैं कि अपने को आप खो बैठे हैं। कोई कुकर्मों में ऐसे लीन हैं कि कुल द्रव्य (Money) व्यभिचारिणी नायिका के कोष में जमा कर रहे हैं। कोई अहङ्कारवश आपस में झगड़ा करके शत्रु को नाश करने जाते हैं पर यह नहीं विचारते कि ऐसा करने के पूर्व मेरा ही नाश होगा। यदि कहीं इस से भी वच गये तो उत्सवादि कर्मों में, यश के लालच वश, ऐसा व्यय कर देते हैं कि पीछे उन्हें भिक्षा भी नहीं मिलती। सब कुकर्मों से यदि वच भी गये तो नवीनाचरण (New light) में होम होनाही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। बुलबुली रूपी राज्य मुकुट सिर पर धारण करके, चक्रवर्त्ती की सुन्दरी कन्या का रूप बना, घोर कलि की मूर्ति हो, उन्नति २ चिल्लाकर कराल

काल में पड़ जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि उस न्यायवान ईश्वर ने हमें क्यों भेजा है और उनको हम कौन सा कार्य दिखावेंगे। अरे अन्यायी बच्चो! पुरुष होकर भी यदि स्त्री बना चाहते हो तो पुनर्जन्म के समय तुम्हारी हार्दिक स्तुति दयालु परमात्मा मान कर तुम्हारी मनोकामना कहीं पूरी न करदें। प्रिय सज्जनों! भारत की सी सोने की भूमि पृथ्वी भर में और कहीं नहीं है पर तौभी भारत का सा भिखार भी कोई देश नहीं! क्यों? क्या कभी आपने इसके कारण सोचकर देखा है? इस के प्रधान कारण दो हैं—एक हमारा शिल्प वाणिज्य में सब से पीछे रहना और दूसरा हमारा अपव्यय। स्कूल कालेज खोलने के लिये देश के नेता मत्था मारकर भी विफल मनोरथ होते हैं, पर विचार कर देखिये कि विवाह आदि के उत्सवों में कितने रुपये में आप आग लगा देते हैं और कितने को जूंठन कर के मट्टी में मिला देते हैं। एक बारात के अपव्यय से एक एक स्कूल खुल सकता है। जितने द्रव्य के धुएं से भारतवासी अपने फेफड़े को नष्ट करते हैं, और जितने रुपयों को वे चबाकर थूक डालते हैं, उतने से न मालूम कितने धनहीन विद्यार्थी देश के मुख को उज्वल करनेवाले विद्वान् हो जायँ। बड़ी २ बातों को जाने दीजिये। एक २ पैसा वा एक २ अधेला करके जो हमलोग अपव्यय करते हैं, जीवन भर में उसी को बचाकर, हम कितने अच्छे काम कर सकते हैं। अनुचित वा अनावश्यक बातों में द्रव्य व्यय करना, लक्ष्मी को

लात मार कर घर से निकाल देना है। देश का कार्य देश के मनुष्य से ही होना है। यह द्रव्य जिसको अपना समझते हो देश का है। देश ही में रहेगा पर तुम अपने लिये कांटा क्यों लगाते हो? व्यय को उचित रीति से करो, तब ही दोनों लोकों का अर्थ प्राप्त कर सकोगे। तुम्हारे जैसे रोगग्रस्त के लिये यह परम कटु औषधि परमोपयोगी होगी।

---

[१३]
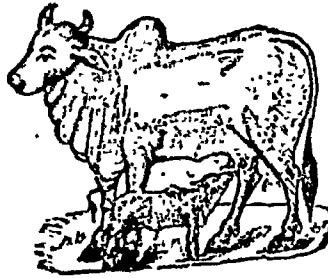
किये हुए पर शोच करना ।

बीती हुई भूलों पर पश्चाताप करना इसी हेतु उचित है कि जिसमें भविष्य में उस से चेतनता रहे। परन्तु संसार में अनेक मनुष्यों ने कृत कुकर्मों के हेतु वहुत वार कई प्रकार से प्राण त्याग दिये हैं। सदा हमको चाहिये कि किसी कार्य के करने के पूर्व ही उसका फलाफल विचार लें, जिस में अन्त में न तो कार्य की हानि ही हो और न दूसरा कोई हंसे ही, जिसकी लज्जा के कारण इस अमूल्य प्राण को त्याग देने को वारी आजाय। जो हो चुका, वह लौट नहीं सकता। अतः बीती हुई बातों पर शोच करना मूर्खता है।

---

[१४]

मेल।
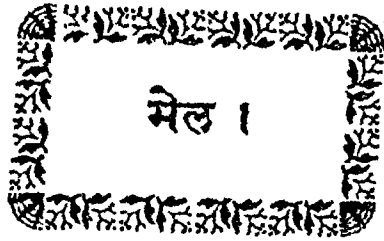
ल में बहुत ही विलक्षण शक्ति है। हम जानते हैं कि एक २ तृण में, पृथक २ तनिक भी बल नहीं रहता। परन्तु जब वे प्रेम पूर्वक आपस में मिल जाते हैं तो लाखों गुन बल वाले हाथी को भी वे अपने वश में कर लेते हैं। हमलोगों की स्वार्थपरता तथा ज्ञानशून्यता ने अपना विराट रूप धारण कर इस रत्न को नष्ट कर दिया है। हम को चाहिये कि ऐक्य रूपी पेड़ को इस प्रकार से पुनः अपने २ घर में रोपें, जिस प्रकार इस परम पवित्र भारतवर्ष के शुद्ध भक्तों के स्थानों में तुलसी जी का पेड़ रोपा जाता है। इस क्रिया के करने से एक बार इसका सोर पृथ्वी भर में फैल जायगा और हमलोगों का पूर्ण उपकार करके सर्व कामनाओं को सिद्ध कर देगा। पूर्व से जो हम सुनते आये हैं कि देवताओं के पास अमृत है जिस के कारण वे कभी नहीं मरते। वही अमृत आज भारतवासियों की वेदना को दूर

करने के लिये कृपालु परमेश्वर ने पुनः भेजा है। आओ भाई भारतवासी! मेलरूपी यह अद्भुत पेड़ हमलोग अपने २ घर में बिना लगाये न रहें, तब ही अमृतरूपी फल हमें प्राप्त होकर हमारी कामना सिद्ध कर देगा।

ईश्वर भक्ति।
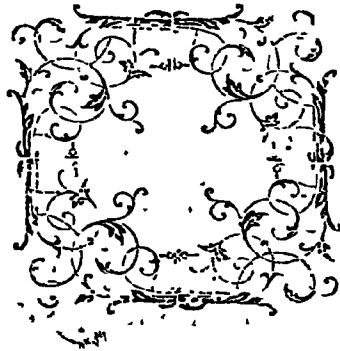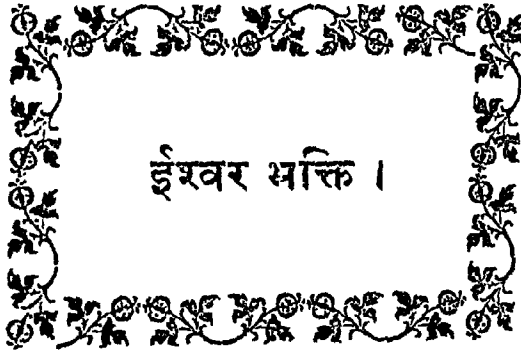
संसार में सब ही धर्म्मवालों को विश्वास है कि हमलोगों के परम पूजनीय पिता ईश्वर ही हैं। उन्हीं के द्वारा हमारा जन्म, पालन तथा मरण होता है। छोटे से बड़े तक, भिक्षुक से राजा तक, मूर्ख से पण्डित तक,

सब ही उनका ध्यान करते हैं, उन का नाम रटते हैं और उन की पूजा करते हैं। ऐसा करने से उस दीनानाथ ईश्वर का उपकार कुछ भी नहीं होता, उपकार अपना ही है। हमलोग क्लेशित होकर, अपने क्लेश से मुक्त होने के लिये या विशेष कामना सिद्ध करने के लिये, उस परोपकारी ईश्वर को स्मरण करते हैं ; वह दयालु भी हमारी प्रार्थना सुन कर, हमारी आन्तरिक कामना सिद्ध करते हैं। जिस प्रकार हमारी सेवा करने वाले हमारी भलाई कर के, हमको प्रसन्न तथा संतुष्ट करते हैं। उस प्रकार हम ईश्वर के साथ भलाई नहीं करते ; केवल उनका ध्यान इसी हेतु करते हैं कि हमारी बुद्धि उन के भय तथा प्रेम से शुद्ध रह कर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार करे और हम अनुचित कर्मों से भागें। ऐसा करने ही से वह प्रसन्न होंगे, और हमारी मुक्ति होगी। अतः हे प्रेमी भारतवासी ! हमारे सच्चे ऋषियों ने जो योग, ध्यान, तप, दया, क्षमा, उपकार तथा न्यायादि सुकीर्त्ति की हैं वा कर रहे हैं, वे बृथा नहीं हैं। अब भी इस परम पवित्र भारतवर्ष के उत्तर खण्ड में हिमालय के समीप जाकर देखिये वहां के निवासी हमें देख कर आपस में कहते हैं कि ये वे ही हैं जिनके देश में छल, कपट तथा मिथ्यादि दोष प्रचलित हैं। उन का

ऐसा कहना वृथा वा निर्मूल नहीं है। जब हम उन की कही हुई बातों पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि वास्तव में हम अन्यायी हैं तथा हमारी चालें अच्छी नहीं है। जब हमारे दो मित्र आपस में किसी बात के लिये झगड़ते हैं तो हमारी बातें उन के झगड़ा मिटाने के लिये स्पष्ट रूप से नहीं निकलतीं। हमारी आन्तरिक इच्छा रहती है कि वे और भी लड़ कर निर्बल हो जायँ। यद्यपि इस से हमारा कोई लाभ नहीं है परन्तु हम अपने स्वभाववश ऐसा करने में कटिबद्ध रहा करते हैं। हमलोग हास्यादि में भी व्यर्थ मिथ्या भाषण किया करते हैं जिस से भी हमारी प्रकृति दूषणीय रहती है। यहां तक कि भोजन करते में भी हमलोग लज्जावश मिथ्या-भाषण कर के क्षुधातुर रह जाते हैं। मनुष्य जबतक स्पष्ट-वादी न होगा, वह किसी कार्य की सिद्धि कर नहीं सकता। अर्थात् मनुष्य को चाहिये कि जैसी भावना उस के भीतर है स्पष्ट रूप से प्रकट कर दे। क्योंकि ईश्वर सदा अन्तर्यामी है वह सदा ही भावना के अनुसार फल दिया करता है। इसी कारण हम को चाहिये कि अपने अन्तष्करण को सदा, स्वच्छ रखें और जिन मित्रों की बुराइयां मेरी झलक में आवें, निष्कपट हो मधुर वचनों से उन्हें दृष्टिगोचर कराते हुए,

उन के दोषों को छोड़ाने की चेष्टा करें ; यही आज्ञा उस कृपालु परमेश्वर की है। वह इन्हीं कार्य्यों को वास्तविक उपकार कहते हैं। जो मनुष्य ऐसे कार्यों के करने में सदा तत्पर रहते हैं, उन के साथ परमात्मा विशेष रूप से रह कर उन की सहायता करते हैं और वे ही मनुष्य परम प्रशंसनीय, यशस्वी, तेजस्वी, तपस्वी, इत्यादि कहे जाते हैं। अतः हे परमात्मन् ! हम होन भारतवासियों की बुद्धि निर्मल कीजिये, जिस में हम अपना ध्यान, आपके चरण कमलों में क्षणमात्र भी श्रद्धापूर्वक लगावें जिस से उचितानुचित ज्ञान प्राप्त कर सदा के लिये आप का दर्शन होवे।